ISSN 2395-051X

स्वतंत्र भारत में नृत्यकला का विकास : संक्षिप्त अध्ययन

डॉ. अपर्णा चाचोंदिया

सहायक प्राध्यापक (नृत्य)

शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर (म.प्र)

सारांश -

आजादी के बाद भारत देश में बहुत कुछ परिवर्तित हुआ। कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में भारत देश की एक अलग ही पहचान है। हमारा देश बहुसांस्कृतिक देश कहलाता है, जो विविध संस्कृतियों के रंगों से सजा हुआ है। कहा जाता है परिवर्तन संसार का नियम है। समय के साथ-साथ बहुत कुछ बदल जाता है। कला एवं संस्कृति किसी भी देश की पहचान होती है, किन्तु समय और परिस्थिति के साथ इनमें परिवर्तन होना भी स्वाभाविक ही है। हमारे देश की कलाओं ने अतीत से लेकर वर्तमान तक बहुत उतार-चढ़ाव झेले हैं चूंकि शोध पत्र का शीर्षक नृत्यकला से सम्बन्धित है, इसलिए हम नृत्यकला के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए मुख्य रूप से आजादी के बाद नृत्यकला के स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करने का प्रयास करेंगे।

मुख्य शब्द - संस्कृति, नृत्यकला

भारतीय नृत्यकला के इतिहास का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि नृत्यकला प्रदर्शनकारी कलाओं के अन्तर्गत आने वाली सर्वाधिक लोकप्रिय कला है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसे नृत्यकला पसंद न हो। यदि कोई नृत्यकला में दक्ष नहीं भी होता तो भी उसे नृत्यकला प्रदर्शन देखना बहुत मनोरंजक लगता है। यदि नृत्यकला के उद्‌भव पर प्रकाश डाला जाए तो पौराणिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नृत्यकला न केवल पृथ्वी अपितु स्वर्गलोक में भी विद्यमान थी। ब्रह्माजी की आज्ञा पर भरतमुनि द्वारा नाट्यशास्त्र की रचना की गयी जिसे पंचम वेद कहा गया। स्वर्गलोक में अप्सराओं द्वारा नृत्य प्रदर्शन के भी अनेकों उदाहरण हैं। स्वर्गलोक से नृत्यकला के पृथ्वी तक आने की कथाऐं भी नृत्य जगत में प्रचलित हैं, जैसे - श्राप के कारण भरतपुत्रों का पृथ्वी पर आकर रहना जहाँ पर उन्होंने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया एवं अपनी संतानों को नाट्य व नृत्यादि कलाओं में दक्ष करके पुनः स्वर्गलोक चले गये। अर्जुन ने भी स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी से नृत्य की शिक्षा ली एवं पृथ्वीलोक पर उत्तरा को नृत्य शिक्षा प्रदान की। भगवती पार्वती ने 'लास्य' नृत्य की शिक्षा वाणासुर की पुत्री उषा को दी। उषा का विवाह भगवान श्री कृष्ण के प्रपौत्र के साथ द्वारिका में हुआ जहाँ पर उषा ने अन्य स्त्रियों को नृत्य शिक्षा प्रदान की। ये सारे प्रसंग स्वर्ग लोक से पृथ्वी लोक पर नृत्यकला के अवतरण को प्रमाणित करते हैं एवं नृत्यकला की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। वेदों में अनेकों स्थानों पर नृत्यकला का उल्लेख प्राप्त होता है।

वैदिककाल की सभ्यता आध्यात्म और धर्म प्रधान सभ्यता थी, किन्तु उस सभ्यता में भी गायन, वादन और नर्तन को महत्व दिया गया था। जब भी बड़े यज्ञ होते थे, तब उत्सव या विशाल समारोह मनाये जाते थे और उसमें नृत्य-गान का विशेष आयोजन होता था।' इसलिए उस समय नृत्यकला प्रदर्शन का उद्देश्य बहुत ही सात्विक होता था और ईश्वरोपासना के लिए नृत्य प्रदर्शन आयोजित होते थे।

डॉ. कपिला वात्स्यायन (इण्डियन क्लासिकल डांस, पृष्ट-2) आदि विद्वानों के मत से भारतीय नृत्यकला के इतिहास को मोटे तौर से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग ई.पू. दूसरी शताब्दी से लेकर नवीं-दसवीं शताब्दी तक माना जाता है, जिसे हम हिन्दू राजाओं का काल कह सकते हैं और दूसरा भाग दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक का माना जाता है जिसे मुसलमान बादशाहों का काल कहा जाता है।[2]

हिन्दू राजाओं के काल में नृत्यादि कलाओं पर भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का बहुत अधिक प्रभाव था। इस समय की कला एवं संस्कृति में एकरूपता थी। वर्तमान काल जैसी विभिन्न नृत्यशैलियाँ इस समय प्रचलित नहीं थीं। हिन्दू राज्यकालीन नृत्यकला के बाद इस्लामी सत्ता के काल में नृत्यकला पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।

मध्यकाल नृत्यकला की विकासयात्रा का अत्यंत महत्वपूर्ण काल माना जाता है। वर्तमान काल में नृत्यकला का जो भी स्वरूप है, वह मुगलकाल से बहुत प्रभावित है। इस काल में भारतीय कलाओं में बहुत कुछ परिवर्तन हुए। इस कालखण्ड के विभिन्न शासकों की रुचि के अनुसार इन कलाओं के अस्तित्व पर गहरा असर देखा जा सकता है। कहीं तो इन कलाओं को जड़-मूल से नष्ट करने का प्रयास किया तो कहीं पर नृत्य-संगीतादि विषयों पर आधारित शास्त्रों की रचना के प्रमाण भी मिलते हैं जो कि कलाओं के क्षेत्र में अमूल्य धरोहर हैं। अधिकांश मुगल शासक संगीत प्रेमी थे किन्तु इस समय नृत्यकला को केवल मनोरंजन एवं विलासिता का साधन समझा जाता था। इसलिए इस कला को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। नृत्यकला नृत्य-गुरूओं द्वारा दरबारी वेश्याओं को सिखाई जाने लगी इसलिए उनमें चारित्रिक दोष आने लगे थे, जिससे नृत्यकला भले घरों की लड़कियों को सिखाना उचित नहीं समझा जाता था। अपने राजाओं को प्रसन्न करने के लिए नृत्याचार्य नृत्य का कठिन अभ्यास करवाते थे एवं अनेकों चमत्कारिक प्रभाव नृत्य प्रस्तुतियों में समाहित करते थे, जिसके परिणामस्वरूप नृत्य-सामग्री में न केवल पर्याप्त वृद्धि हुई अपितु अनेक विशेषताओं से सुसज्जित नृत्य-शैलियां भी तैयार हुई। ये बात भी सत्य है कि विभिन्न शास्त्रीय नृत्य शैलियों की नींव भी इसी काल में पड़ी थी।

दक्षिण भारत की तुलना में उत्तर भारत पर मुस्लिम शासन का प्रभाव अधिक रहा इसलिए यहाँ की कला व संस्कृति इस काल में अधिक प्रभावित हुई। दक्षिण भारत मुगल प्रभाव से अछूता रह गया हो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि कुछ दक्षिण भारतीय नृत्य शैलियों में भी नृत्यारंभ करते हुए 'सलामी' करने का चलन मध्यकाल की ही देन है।

यूरोपीय सभ्यता के प्रवेशकाल में नृत्यादि कलाएं अधिक प्रभावित नहीं हुई, न ही उनके स्वरूप में परिवर्तन करने के प्रयास किए गए। अंग्रेज शासक भारतीय नृत्य-संगीत को देखते थे एवं उसकी सराहना भी करते थे। इस कालखंड में संगीत, नृत्य प्रशिक्षण हेतु अनेक संस्थाएं स्थापित हुई। नृत्यादि कलाओं को प्रदर्शन हेतु सम्मानित मंच पर लाने के उद्देश्य से विभिन्न संगीत सम्मेलनों के आयोजन होने लगे। कलाएँ वंश परम्पराओं के बंधन से मुक्त हो चलीं थीं। संगीत-नृत्यादि कलाओं की संस्थागत शिक्षण प्रणाली प्रारंभ हुई, जिसमें समान रूप से सभी को प्रशिक्षण दिया जाता था। भद्र परिवारों ने इन कलाओं में रुचि लेना प्रारंभ कर दिया था। इस तरह कलाओं को समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ। इस समय अनेकों शास्त्र लिखे गए, जिनमें विदेशी विद्वानों ने भी भारतीय संगीत-नृत्य सम्बन्धी अनेक ग्रंथों की रचना की। इसके अतिरिक्त और भी अनेक भाषाओं में शास्त्र ग्रंथों की रचना की गई। इस तरह इस कालखंड में लिखित साहित्य का बहुत विकास हुआ। नृत्यकला को न केवल सार्वजनिक मंच मिला अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक अपनी कला और देश का परचम लहराने का अवसर प्राप्त हुआ। विभिन्न नृत्य शैलियों के प्रचार-प्रसार एवं प्रशिक्षण के लिए केरल कला मण्डलम, कलाक्षेत्रम, शांति निकेतन, नृत्यालयम आदि अनेकों नृत्य संस्थानों की स्थापना हुई। इसी समय भारतीय कलाकारों का परिचय पश्चिमी देशों के नृत्य 'बैले' से हुआ। इससे प्रभावित होकर नृत्य-नाटिकाओं की रचना की जाने लगी। इस तरह हम देखते हैं कि इस युग में नृत्य के क्षेत्र में बहुत से रचनात्मक कार्य हुए एवं समाज में एक प्रबुद्ध दर्शक वर्ग भी स्थापित हो गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नृत्यकला में भी स्वच्छन्दता आ गयी। समाज में कलाओं और कलाकारों को बहुत सम्मान मिलने लगा। देश में अनेकों नृत्य-प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित हुए और समाज के हर वर्ग ने नृत्यकला में रुचि लेना आरंभ कर दिया था। इन नृत्य प्रशिक्षण केन्द्रों में मुख्य रूप से नृत्य की विधिवत शिक्षा दी जाती थी और पर्याप्त समय देकर अभ्यास करवाया जाता था, जिससे उच्च कोटि के कलाकार तैयार हुए और अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक भारतीय नृत्य शैलियों को स्थापित किया। नृत्यकला ससम्मान सार्वजनिक मंच पर आ चुकी थी, इसलिए मंच की आधारभूत आवश्यकताओं पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया एवं अत्यंत प्रभावी ढंग से उनको प्रयोग में लाया जाने लगा। मंच व्यवस्था के अंतर्गत मंच सज्जा, दृश्य प्रबंध, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि व्यवस्था आदि में नवीन उपकरणों का प्रयोग कर प्रस्तुति को अत्यंत आकर्षक रूप प्राप्त हुआ। नर्तक-नर्तकियों द्वारा उनकी रूपसज्जा एवं वेशभूषा पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाने लगा, क्योंकि ये नर्तक-नर्तकी ही सम्पूर्ण प्रदर्शन के केन्द्र बिन्दु होते हैं जिन्हें आकर्षक दिखना अनिवार्य होता है ताकि दर्शकों में लगातार रस की सृष्टि होती रहे। पारंपरिक वाद्य-वृन्दों के अलावा भी अन्य वाद्यों को नृत्य संगीत में प्रयुक्त किया जाने लगा। पहले शास्त्रीय नृत्य शैलियों का एकल प्रदर्शन ही हुआ करता था, किन्तु अब न केवल युगल नृत्य प्रदर्शन अपितु सामूहिक नृत्य प्रदर्शन भी होने लगे हैं। प्रेक्षागृह निर्माण पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा। लगभग सभी नृत्य शैलियों ने न केवल अपने आंतरिक कलात्मक सौन्दर्य को निखारा अपितु बाह्य सौन्दर्य पर भी पर्याप्त ध्यान दिया। लोकनृत्य किसी भी देश की संस्कृति का दर्पण होते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोकनृत्यों का भी मंच पर अवतरण हुआ।

भारत की राजधानी दिल्ली में गणतंत्र दिवस के अवसर पर प्रतिवर्ष लोकनृत्यों के प्रदर्शन के द्वारा भारत देश की बहुरंगी संस्कृति के दर्शन होते हैं। लोकनृत्य कलाओं को भी सार्वजनिक रूप से अपनी कला प्रदर्शन के पर्याप्त अवसर मिलते हैं।

सन् 1954 में संगीत नाटक अकादमी की स्थापना से संगीत जगत में कलाओं का बहुत अधिक विकास हुआ। प्रादेशिक स्तर पर भी अकादमियों की स्थापना से कलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। न केवल संगीत समारोहों का आयोजन बल्कि कलाकारों को आर्थिक सहयोग करने के उद्देश्य से छात्रवृत्तियां प्रदान की जाने लगीं। सैद्धांतिक पक्ष को सुदृढ़ बनाने हेतु पुस्तकों, शोधपत्रों एवं आलेखों आदि के प्रकाशन उच्च स्तर पर प्रारंभ हो गए। विभिन्न स्तरों पर नृत्यादि कलाओं की प्रतियोगिताओं एवं उच्च स्तरीय मंच प्रदर्शनों का आयोजन होने से कलाकारों को काफी प्रोत्साहन मिलने लगा। शैक्षणिक पाठ्यकम में भी नृत्यकला को एक विषय के रूप में स्थान प्राप्त हुआ, जहाँ पर नृत्यकला के प्रायोगिक एवं सैद्धांतिक दोनों ही पक्षों का विधिवत प्रशिक्षण प्रारंभ हो गया। उच्च शिक्षा में नृत्यकला एक मुख्य विषय के रूप में शामिल हो चुका है जिसमें शोधकार्य एवं पात्रता परीक्षाओं जैसे नेट एवं स्लेट आदि में भी नृत्यकला एक विषय के रूप में शामिल हैं। परिणामस्वरूप महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में नृत्य विषय के विद्यार्थियों को भी शैक्षणिक पद प्राप्त होने के अवसर प्राप्त होते हैं। प्राथमिक स्तर से ही बहुत से विद्यालयों में नृत्य शिक्षकों की नियुक्ति होती है जिससे प्रारंभिक स्तर से ही बच्चे नृत्यकला से परिचित हो जाएं एवं उनको इसका प्रारंभिक प्रशिक्षण प्राप्त हो।

नृत्यकला में प्रशिक्षण प्राप्त चयनित कलाकारों को भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियां एवं फेलोशिप प्रदान की जाती हैं। विभिन्न सांस्कृतिक कार्यकमों के माध्यम से कलाकार देश-विदेश में अपनी कलाओं का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। स्वतंत्र भारत में नृत्यकला विश्व स्तरीय कीर्तिमान अर्जित कर चुकी है एवं भविष्य में भी प्रतिभासम्पन्न मेहनती कलाकारों के लिए प्रगति के द्वार हमेशा खुले हुए हैं।

संदर्भ -

1. आजाद, पं. तीरथराम - कथक ज्ञानेश्वरी/नटेश्वर कला मंदिर नई दिल्ली/ द्वितीय संस्करण 2010/ पृ. 206
2. दाधीच, डॉ. पुरू - कथक नृत्य शिक्षा (द्वितीय भाग)/ बिन्दु प्रकाशन इन्दौर/ पंचम संस्करण 2017/ पृ. 16